

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

# कृपामयी भगवद्गीता

परमश्रद्धेय स्वामीजी  
श्रीरामसुखदासजी महाराजके  
वचनोंसे संगृहीत

गीता प्रकाशन, गोरखपुर



**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**Icreator of  
hinduism  
server!**

 **KAPWING**

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

गीता-जयन्तीके उपलक्ष्यमें—

# कृपामयी भगवद्गीता

[ परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके  
वचनोंसे संगृहीत ]



~~~~~  
त्वमेव माता च पिता त्वमेव  
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।  
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव  
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥  
~~~~~

संकलनकर्ता—

राजेन्द्र कुमार धवन

प्रकाशक—गीता प्रकाशन,  
गीता-सत्संग-मण्डल,  
कसौधन पंचायती मन्दिर ( हरिवंश गली ),  
गोरखपुर—२७३००५ ( उ०प्र० )

सम्पर्क-सूत्र—093 895 93 845; radhagovind10@gmail.com

## विषय-अूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१. ँक निवेदन .....	१
२. गीताकी महिमा .....	२
३. गीताका तात्पर्य .....	४
४. गीताकी विलक्षणता .....	७
५. गीता-अमृत-बिन्दु .....	९
६. गीता-सार .....	११
७. भगवद्गीता—विदेशी विद्वानोंकी दृष्टिमें .....	१३





## कृपामयी भगवद्गीता

### एक निवेदन

अनेक सन्त-महात्माओंकी बातें सुननेसे और अनेक पुस्तकें पढ़नेसे मेरेपर यह असर पड़ा कि भगवद्गीता बड़ा अनुपम, अलौकिक ग्रन्थ है। इसमें साधकके लिये पूरी सामग्री मिलती है, चाहे वह किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, समुदाय आदिका क्यों न हो! कारण यह है कि इसमें किसी मत-विशेषकी प्रशंसा अथवा निन्दा नहीं है। इसमें तो वास्तविक तत्त्वकी प्रशंसा है। वास्तविकता यही है कि जो नित्य-निरन्तर रहनेवाला अपरिवर्तनशील तत्त्व है, उसका अनुभव परिवर्तनशील संसारके रागसे रहित होनेपर स्वतः होता है। इसका विशेष अधिकारी वही है, जिसको परिवर्तनशीलमें चैन नहीं पड़ता, जो विनाशी सुखमें नहीं फँसता।

गीता-ग्रन्थ छोटा है। इसकी संस्कृत-भाषा सरल है। भाव बड़े गम्भीर हैं। साधनोंका वर्णन करनेमें, विस्तारपूर्वक समझानेमें, एक-एक साधनको कई बार कहनेमें संकोच नहीं किया; परन्तु ग्रन्थका कलेवर नहीं बढ़ा! ऐसा संक्षेपमें विस्तारपूर्वक कहनेवाला दूसरा कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता!

मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें परमात्मतत्त्वका अनुभव कर सकता है, जिसको प्राप्त करना मनुष्यमात्रका जन्मसिद्ध अधिकार है। युद्ध-जैसी महान् घोर परिस्थितिमें भी वह अपना कल्याण कर सकता है! इस प्रकार गीतामें मनुष्यको व्यवहारमात्रमें परमार्थकी कला सिखायी गयी है। अतः मनुष्यमात्रको कल्याणका मार्ग दिखानेवाला इसके जोड़ेका दूसरा कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता।

मन लगाकर गीताका पाठ करनेमात्रसे शान्ति मिलती है। ध्यानपूर्वक गीताका पाठ करनेमात्रसे बहुत तरहके भाव स्फुरित होते हैं और वे भाव बड़े ही शान्तिदायक होते हैं। मनमें कोई शंका होती है तो पाठ करते-करते उसका समाधान हो जाता है। गीताके भावोंपर विचार करनेमात्रसे लाभ होता है, इसमें मुझे किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। इसलिये प्रत्येक भाई-बहनको गीताके भावोंको हृदयंगम करना चाहिये और उसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

—परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज,

सितम्बर १९८२, वृन्दावन



## गीताकी महिमा

श्रीमद्भगवद्गीता एक बहुत ही अलौकिक, विचित्र ग्रन्थ है। इसकी महिमा अगाध और असीम है। इसमें साधकके लिये उपयोगी पूरी सामग्री मिलती है, चाहे वह किसी भी देशका, किसी भी वेशका, किसी भी समुदायका, किसी भी सम्प्रदायका, किसी भी वर्णका, किसी भी आश्रमका कोई व्यक्ति क्यों न हो। इसका कारण यह है कि इसमें किसी समुदाय-विशेषकी निन्दा या प्रशंसा नहीं है, प्रत्युत वास्तविक तत्त्वका ही वर्णन है। वास्तविक तत्त्व (परमात्मा) वह है, जो परिवर्तनशील प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थोंसे सर्वथा अतीत और सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिमें नित्य-निरन्तर एकरस-एकरूप रहनेवाला है। जो मनुष्य जहाँ है और जैसा है, वास्तविक तत्त्व वहाँ वैसा ही पूर्णरूपसे विद्यमान है। परन्तु परिवर्तनशील प्रकृतिजन्य वस्तु, व्यक्तियोंमें राग-द्वेषके कारण उसका अनुभव नहीं होता। सर्वथा राग-द्वेषरहित होनेपर उसका स्वतः अनुभव हो जाता है।

यह भगवद्गीता-ग्रन्थ प्रस्थानत्रयमें माना जाता है। पगडण्डीको 'पद्धति' कहते हैं और राजमार्ग, घण्टापथ अथवा चौड़ी सड़कको 'प्रस्थान' कहते हैं। मनुष्यमात्रके उद्धारके लिये तीन राजमार्ग 'प्रस्थानत्रय' नामसे कहे जाते हैं—एक वैदिक प्रस्थान है, जिसको 'उपनिषद्' कहते हैं; एक दार्शनिक प्रस्थान है, जिसको 'ब्रह्मसूत्र' कहते हैं और एक स्मार्त प्रस्थान है, जिसको 'भगवद्गीता' कहते हैं। **प्रस्थानत्रयमें गीता बहुत विलक्षण है; क्योंकि इसमें उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र दोनोंका ही तात्पर्य आ जाता है।** उपनिषदोंमें मन्त्र हैं, ब्रह्मसूत्रमें सूत्र हैं और भगवद्गीतामें श्लोक हैं। भगवद्गीतामें श्लोक होते हुए भी भगवान्की वाणी होनेसे ये मन्त्र ही हैं। इन श्लोकोंमें बहुत गहरा अर्थ भरा हुआ होनेसे इनको सूत्र भी कह सकते हैं। 'उपनिषद्' अधिकारी मनुष्योंके कामकी चीज है और 'ब्रह्मसूत्र' विद्वानोंके कामकी चीज है; परन्तु 'भगवद्गीता' सभीके कामकी चीज है।

गीता उपनिषदोंका सार है, पर वास्तवमें गीताकी बात उपनिषदोंसे भी विशेष है। कारणकी अपेक्षा कार्यमें विशेष गुण होता है; जैसे—आकाशमें केवल एक गुण 'शब्द' है, पर उसके कार्य वायुमें दो गुण 'शब्द और स्पर्श' हैं।

वेद भगवान्के निःश्वास हैं और गीता भगवान्की वाणी है। निःश्वास तो स्वाभाविक होते हैं, पर गीता भगवान्ने योगमें स्थित होकर कही है\*। अतः वेदोंकी अपेक्षा भी गीता विशेष है।

सभी दर्शन गीताके अन्तर्गत हैं, पर गीता किसी दर्शनके अन्तर्गत नहीं है। दर्शनशास्त्रमें जगत् क्या है, जीव क्या है और ब्रह्म क्या है—यह पढ़ाई होती है। परन्तु गीता पढ़ाई नहीं कराती, प्रत्युत

\* न शक्यं तन्मया भूयस्तथा वक्तुमशेषतः ॥

परं हि ब्रह्म कथितं योगयुक्तेन तन्मया।

(महाभारत, आश्व० १६। १२-१३)

भगवान् बोले—'वह सब-का-सब उसी रूपमें फिर दुहरा देना अब मेरे वशकी बात नहीं है। उस समय मैंने योगयुक्त होकर परमात्मतत्त्वका वर्णन किया था।'

योगयुक्त अर्थात् योगमें स्थित होकर गीता कहनेका तात्पर्य है कि सुननेवालेका हित किसमें है? उसके हितके लिये क्या कहना चाहिये? भविष्यमें भी जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, उसका हित किसमें होगा?—इस प्रकार सभी साधकोंके हितमें स्थित होकर गीता कही है।

अनुभव कराती है।

गीतापर कई टीकाएँ हो गयीं और कई टीकाएँ होती ही चली जा रही हैं, फिर भी सन्त-महात्माओं, विद्वानोंके मनमें गीताके नये-नये भाव प्रकट होते रहते हैं। अलग-अलग आचार्योंने गीताकी अलग-अलग टीका लिखी है। उनकी टीकाके अनुसार चलनेसे मनुष्यका कल्याण तो हो सकता है, पर वह गीताके अर्थको पूरा नहीं जान सकता। आजतक गीताकी जितनी टीकाएँ लिखी गयी हैं, वे सब-की-सब इकट्ठी कर दें तो भी गीताका अर्थ पूरा नहीं होता! जैसे किसी कुएँसे सैकड़ों वर्षोंतक असंख्य आदमी जल पीते रहें तो भी उसका जल वैसा-का-वैसा ही रहता है, ऐसे ही असंख्य टीकाएँ लिखनेपर भी गीता वैसी-की-वैसी ही रहती है, उसके भावोंका अन्त नहीं आता। कुएँके जलकी तो सीमा है, पर गीताके भावोंकी सीमा नहीं है। अतः गीताके विषयमें कोई कुछ भी कहता है तो वह वास्तवमें अपनी बुद्धिका ही परिचय देता है—‘**सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहें बिनु रहा न कोई॥**’ (मानस, बाल० १३। १)। इस गम्भीर ग्रन्थपर कितना ही विचार किया जाय, तो भी इसका कोई पार नहीं पा सकता। इसमें जैसे-जैसे गहरे उतरते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे इसमेंसे गहरी बातें मिलती चली जाती हैं। जब एक अच्छे विद्वान् पुरुषके भावोंका भी जल्दी अन्त नहीं आता, फिर जिनका नाम, रूप आदि यावन्मात्र अनन्त है, ऐसे भगवान्के द्वारा कहे हुए वचनोंमें भरे हुए भावोंका अन्त आ ही कैसे सकता है?

भगवान्की वाणी बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंकी वाणीसे भी ठोस और श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् ऋषि-मुनियोंके भी आदि हैं—‘**अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः**’ (गीता १०। २)। अतः कितने ही बड़े ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा क्यों न हों और उनकी वाणी कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हो, पर वह भगवान्की दिव्यातिदिव्य वाणी ‘गीता’ की बराबरी नहीं कर सकती।

इस छोटे-से ग्रन्थमें इतनी विलक्षणता है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहनेवाला किसी भी वर्ण, आश्रम, देश, सम्प्रदाय, मत आदिका कोई भी मनुष्य क्यों न हो, इस ग्रन्थको पढ़ते ही इसमें आकृष्ट हो जाता है। अगर मनुष्य इस ग्रन्थका थोड़ा-सा भी पठन-पाठन करे तो उसको अपने उद्धारके लिये बहुत ही सन्तोषजनक उपाय मिलते हैं। **हरेक दर्शनके अलग-अलग अधिकारी होते हैं, पर गीताकी यह विलक्षणता है कि अपना उद्धार चाहनेवाले सब-के-सब इसके अधिकारी हैं।**

भगवद्गीतामें साधनोंका वर्णन करनेमें, विस्तारपूर्वक समझानेमें, एक-एक साधनको कई बार कहनेमें संकोच नहीं किया गया है, फिर भी ग्रन्थका कलेवर नहीं बढ़ा है। ऐसा संक्षेपमें विस्तारपूर्वक यथार्थ और पूरी बात बतानेवाला दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं दीखता। अपने कल्याणकी उत्कट अभिलाषावाला मनुष्य हरेक परिस्थितिमें परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर सकता है; युद्ध-जैसी घोर परिस्थितिमें भी अपना कल्याण कर सकता है—इस प्रकार व्यवहारमात्रमें परमार्थकी कला गीतामें सिखायी गयी है। अतः **इसके जोड़ेका दूसरा कोई ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता।**



## गीताका तात्पर्य

थोड़े शब्दोंमें कहें तो गीताका तात्पर्य है—मनुष्यमात्रका कल्याण करना। शास्त्रोंमें कल्याणके कई मार्ग बताये गये हैं। गीताकी टीकाओंको भी देखें तो उनमें अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदाभेदवाद आदि अनेक मतोंको लेकर टीकाएँ की गयी हैं। इस प्रकार अनेक वाद, सिद्धान्त, मत-मतान्तर होते हुए भी गीताका किसीके साथ विरोध नहीं है। गीताने किसी भी मतका खण्डन नहीं किया है; परन्तु अपनी एक ऐसी विलक्षण बात कही है, जिसके सामने सब नतमस्तक हो जाते हैं। कारण कि गीता किसी एक वाद, मत आदिको लेकर नहीं कही गयी है, प्रत्युत जीवमात्रके कल्याणको लेकर कही गयी है।

गीतामें किसी मतका आग्रह नहीं है, प्रत्युत केवल जीवके कल्याणका ही आग्रह है। मतभेद गीतामें नहीं है, प्रत्युत टीकाकारोंमें है। गीताके अनुसार चलनेसे सगुण और निर्गुणके उपासकोंमें परस्पर खटपट नहीं हो सकती। **गीतामें भगवान् साधकको समग्रकी तरफ ले जाते हैं।** सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, द्विभुज, चतुर्भुज, सहस्रभुज आदि सब रूप समग्र परमात्माके ही अन्तर्गत हैं। समग्ररूपमें कोई भी रूप बाकी नहीं रहता। किसीकी भी उपासना करें, सम्पूर्ण उपासनाएँ समग्ररूपके अन्तर्गत आ जाती हैं। सम्पूर्ण दर्शन समग्ररूपके अन्तर्गत आ जाते हैं। अतः सब कुछ परमात्माके ही अन्तर्गत है, परमात्माके सिवाय किञ्चिन्मात्र भी कुछ नहीं है—इसी भावमें सम्पूर्ण गीता है।

गीताका सर्वोपरि सिद्धान्त है—‘**वासुदेवः सर्वम्**’ (७। १९) अर्थात् सब कुछ भगवान् ही हैं। संसारके विषयमें दार्शनिकोंके अनेक मतभेद हैं। कोई अजातवाद मानता है, कोई दृष्टिसृष्टिवाद मानता है, कोई विवर्तवाद मानता है, कोई परिणामवाद मानता है, कोई आरम्भवाद मानता है, पर गीता कोई वाद न मानकर ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ को ही मुख्य मानती है। ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ में सभी वाद, मत समाप्त हो जाते हैं। कारण कि जबतक अहम्की सूक्ष्म गन्ध रहती है, तभीतक दार्शनिकोंमें और दर्शनोंमें मतभेद रहता है, जबकि ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ में अहम्की सूक्ष्म गन्ध भी नहीं रहती।

एक परमात्मतत्त्वके सिवाय दूसरी सत्ताकी मान्यता रहनेसे प्रवृत्तिका उदय होता है और दूसरी सत्ताकी मान्यता मिटनेसे निवृत्तिकी दृढ़ता होती है। प्रवृत्तिका उदय होना ‘भोग’ है और निवृत्तिकी दृढ़ता होना ‘योग’ है। गीता ‘सब कुछ परमात्मा है’—ऐसा मानती है और इसीको महत्त्व देती है। संसारमें कार्यरूपसे, कारणरूपसे, प्रभावरूपसे, सब रूपोंसे मैं-ही-मैं हूँ—यह बतानेके लिये ही भगवान्ने गीतामें चार जगह (सातवें, नवें, दसवें और पन्द्रहवें अध्यायमें) अपनी विभूतियोंका वर्णन किया है। ब्रह्म (निर्गुण-निराकार), कृत्स्न अध्यात्म (अनन्त योनियोंके अनन्त जीव), अखिल कर्म (उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिकी सम्पूर्ण क्रियाएँ), अधिभूत (अपने शरीरसहित सम्पूर्ण पांच-भौतिक जगत्), अधिदैव (मन-इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवतासहित ब्रह्माजी आदि सभी देवता) तथा अधियज्ञ (अन्तर्यामी विष्णु और उनके सभी रूप)—ये सब-के-सब ‘**वासुदेवः सर्वम्**’ के अन्तर्गत आ जाते हैं (सातवें अध्यायका उनतीसवाँ-तीसवाँ श्लोक)। तात्पर्य है कि सत्, असत् और उससे परे जो कुछ भी है, वह सब परमात्मा ही हैं—‘**त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्**’ (गीता ११। ३७)। संसार अपने रागके कारण ही दीखता है। रागके कारण ही दूसरी सत्ता दीखती है। राग न हो तो एक परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है। जैसे, भगवान्ने कहा है—‘**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**’ (गीता १५। १५) ‘मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ’। जिस हृदयमें भगवान् रहते हैं, उसी हृदयमें राग-द्वेष, हलचल, अशान्ति होते हैं। हृदयमें ही सुख होता है और हृदयमें ही दुःख आता है। समुद्र-मन्थनमें वहींसे



विष निकला, वहींसे अमृत निकला। भगवान् शंकरने विष पी लिया तो अमृत निकल आया। इसी तरह राग-द्वेषको मिटा दें तो परमात्मा निकल आयेंगे। सन्त-महात्माओंके हृदयमें राग-द्वेष नहीं रहते; अतः वहाँ परमात्मा रहते हैं।

सब कुछ परमात्मा ही हैं—यह खुले नेत्रोंका ध्यान है। इसमें न आँख बन्द करने (ध्यान) की जरूरत है, न कान बन्द करने (नादानुसन्धान) की जरूरत है, न नाक बन्द करने (प्राणायाम) की जरूरत है! इसमें न संयोगका असर पड़ता है, न वियोगका; न किसीके आनेका असर पड़ता है, न किसीके जानेका। जब सब कुछ परमात्मा ही है तो फिर दूसरा कहाँसे आये? कैसे आये?

गीता समग्रको मानती है, इसीलिये गीताका आरम्भ और अन्त शरणागतिमें हुआ है। शरणागतिसे ही समग्रकी प्राप्ति होती है। परमात्माके समग्र-रूपमें सब रूप होते हुए भी सगुणकी मुख्यता है। कारण कि सगुणके अन्तर्गत तो निर्गुण भी आ जाता है, पर निर्गुणमें (गुणोंका निषेध होनेसे) सगुण नहीं आता। अतः सगुण ही समग्र हो सकता है।

भगवान् श्रीकृष्ण समग्र हैं—‘असंशयं समग्रं माम्’ (गीता ७। १)। गीता समग्रकी वाणी है, इसलिये गीतामें सब कुछ है। जो जिस दृष्टिसे गीताको देखता है, गीता उसको वैसी ही दीखने लगती है—‘ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्’ (गीता ४। ११)।

कोई आचार्य पहले कर्मयोग, फिर ज्ञानयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम मानते हैं और कोई आचार्य पहले कर्मयोग, फिर भक्तियोग, फिर ज्ञानयोग—यह क्रम मानते हैं। परन्तु गीता पहले ज्ञानयोग, फिर कर्मयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम मानती है। गीता कर्मयोगको ज्ञानयोगकी अपेक्षा विशेष मानती है—‘तयोस्तु कर्म-सन्न्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते’ (५। २)। कारण कि ज्ञानयोगके बिना तो कर्मयोग हो सकता है—‘कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः’ (३। २०), ‘यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते’ (४। २३), पर कर्मयोगके बिना ज्ञानयोग होना कठिन है—‘सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः’ (५। ६)। श्रीमद्भागवतमें भी पहले ज्ञानयोग, फिर कर्मयोग, फिर भक्तियोग—यह क्रम कहा गया है\*। एक विलक्षण बात और है कि गीता कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंको समकक्ष और लौकिक बताती है—‘लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा०’ (३। ३)। क्षर (जगत्) और अक्षर (जीव)—दोनों लौकिक हैं—‘द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च’ (गीता १५। १६), पर भगवान् अलौकिक हैं—‘उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः’ (१५। १७)। क्षरको लेकर कर्मयोग और अक्षरको लेकर ज्ञानयोग चलता है; अतः कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनों लौकिक हैं। परन्तु भक्तियोग भगवान्को लेकर चलता है; अतः भक्तियोग अलौकिक है।

गीताने भक्तिको सर्वश्रेष्ठ बताया है (छठे अध्यायका सैंतालीसवाँ श्लोक)। गीताकी भक्ति भेदवाली नहीं है, प्रत्युत अद्वैत भक्ति है। वास्तवमें देखा जाय तो ज्ञानमें द्वैत है और भक्तिमें अद्वैत है। कारण कि ज्ञानमें तो जड़-चेतन, जगत्-जीव, शरीर-शरीरी, असत्-सत्, प्रकृति-पुरुष आदि दो-दो हैं, पर भक्तिमें केवल भगवान् ही हैं—‘वासुदेवः सर्वम्’ (गीता ७। १९), ‘सदसच्चाहम्’ (गीता ९। १९)। भगवान्ने ज्ञानके साधनोंमें भी भक्ति बतायी है—‘मयि चानन्ययोगेन०’ (१३। १०) और गुणातीत होनेका उपाय भी भक्ति बताया है—‘मां च योऽव्यभिचारेण०’ (१४। २६)। ज्ञानकी परानिष्ठासे भी पराभक्तिकी प्राप्ति होती है—‘मद्भक्तिं लभते पराम्’ (१८। ५५)। इस पराभक्तिसे जानना, देखना

\* योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

(श्रीमद्भा० ११। २०। ६)

और प्रवेश करना—तीनोंकी प्राप्ति हो जाती है (ग्यारहवें अध्यायका चौवनवाँ श्लोक)। भगवान् अपने भक्तको कर्मयोग और ज्ञानयोग—दोनोंकी प्राप्ति करा देते हैं (दसवें अध्यायका दसवाँ-ग्यारहवाँ श्लोक)। भगवान्ने अपने भक्तको सबसे उत्तम योगी बताया है—‘स मे युक्ततमो मतः’ (६। ४७), ‘ते मे युक्ततमा मताः’ (१२। २), ‘स योगी परमो मतः’ (६। ३२)। ध्यानयोगमें भी भक्ति आयी है—‘युक्त आसीत मत्परः’ (६। १४)। कर्मयोगमें भी भगवान्ने भक्ति बतायी है—‘युक्त आसीत मत्परः’ (२। ६१)। भगवान्ने सभी योगोंमें अपनी भक्ति (परायणता) बतायी है, यह भक्तिकी विशेषता है। अर्जुनका प्रश्न भक्तिविषयक नहीं था, फिर भी भगवान्ने अपनी तरफसे भक्तिका वर्णन किया (अठारहवें अध्यायके छप्पनवेंसे छच्छठवें श्लोकतक)। भक्तिसे समग्र परमात्माकी प्राप्ति होती है (सातवें अध्यायका उनतीसवाँ-तीसवाँ श्लोक)।

गीताका सातवाँ, नवाँ और पन्द्रहवाँ अध्याय, दसवें अध्यायका आरम्भ तथा अठारहवें अध्यायके छप्पनवेंसे छच्छठवेंतकके श्लोक हमें बहुत विलक्षण दीखते हैं। इनमें ‘अर्जुन उवाच’ नहीं है अर्थात् ये भगवान्ने अपनी तरफसे अत्यन्त कृपा करके कहे हैं।

गीतामें कर्मयोगके वर्णनमें ज्ञानयोग-भक्तियोगकी, ज्ञानयोगके वर्णनमें कर्मयोग-भक्तियोगकी और भक्तियोगके वर्णनमें कर्मयोग-ज्ञानयोगकी बात भी आ जाती है। इसका तात्पर्य है कि साधक कोई भी योग करे तो उसको तीनों योगोंकी प्राप्ति हो जाती है अर्थात् उसको मुक्ति और भक्ति—दोनों प्राप्त हो जाते हैं। कारण कि परा और अपरा—दोनों प्रकृतियाँ भगवान्की ही हैं। ज्ञानयोग पराको लेकर और कर्मयोग अपराको लेकर चलता है। इसलिये किसी एक योगकी पूर्णता होनेपर तीनों योगोंकी पूर्णता हो जाती है। परन्तु इसमें एक शर्त यह है कि साधक अपने मतका आग्रह न रखे और दूसरेके मतका खण्डन या निन्दा न करे, दूसरेके मतको छोटा न माने। अपने मतका आग्रह रहनेसे और दूसरेके मतको छोटा मानकर उसका खण्डन या निन्दा करनेसे साधकको मुक्ति (तत्त्वज्ञान)—की प्राप्ति तो हो सकती है, पर भक्ति (परमप्रेम)—की अर्थात् समग्रताकी प्राप्ति नहीं हो सकती।



## गीताकी विलक्षणता

सम्पूर्ण वेदोंका सार उपनिषद् हैं और उपनिषदोंका सार गीता है। उपनिषदोंका सार होनेपर भी गीता बहुत अलौकिक ग्रन्थ है। जैसे आमके वृक्षमें जड़से लेकर पत्तोंतक रस विद्यमान रहता है, पर जो रस उसके फलमें है, वह टहनी, पत्ते आदिमें नहीं है। ऐसे ही सम्पूर्ण शास्त्रों, वेदों, उपनिषदोंका सार होते हुए भी जो विलक्षणता गीतामें है, वह शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों आदिमें नहीं है। इसलिये गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसका सिद्धान्त शास्त्रोंके परतन्त्र नहीं है। अतः **शास्त्रोंको पढ़कर कोई गीताके भावोंको समझना चाहे तो वह समझ नहीं सकेगा। शास्त्रोंका विशेष ज्ञान होनेपर गीताके भावोंको समझनेमें बाधा लगेगी, गीताके भाव ठीक समझमें नहीं आयेंगे।** कारण कि पहले शास्त्र, सम्प्रदाय आदिके जो संस्कार पड़ जाते हैं, जो धारणा बन जाती है, वह जल्दी बदलती नहीं। गीता विद्वत्ता (पण्डिताई) की दृष्टिसे नहीं कही गयी है, प्रत्युत केवल जीवके कल्याणकी दृष्टिसे कही गयी है। भगवान्ने कोरी विद्वत्ताके लिये अर्जुनको फटकारा है—‘**प्रज्ञावादांश्च भाषसे**’ (गीता २। ११)। अतः गीताको समझनेमें केवल कल्याणकी इच्छा काम आती है, शास्त्रज्ञान, योग्यता, बुद्धिमत्ता आदि काम नहीं आते। **अगर गीताको समझना हो तो किसी ग्रन्थ, सम्प्रदाय आदिका आग्रह छोड़कर, बिलकुल अनजान होकर और केवल भगवत्कृपाका आश्रय लेकर गीताका अध्ययन करना चाहिये।**

गीता एक प्रासादिक ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ अपनी शरण लेनेवालेपर खुद कृपा करता है और कृपा करके उसके सामने प्रकट होता है। मैंने ऐसे मनुष्योंको देखा है, जिनको संस्कृतका बोध नहीं है, पर वे गीताका अर्थ करते हैं! भाषाका बोध न होनेपर भी गीताका सिद्धान्त, भाव उनके मनमें आ जाता है। आजसे साठ-पैंसठ वर्ष पहलेकी बात है। कलकत्तेमें एक मुनीम थे। उनको शुद्ध हिन्दी लिखनी नहीं आती थी। एक दिन उन्होंने कहा कि मैं गीता कण्ठस्थ करना चाहता हूँ; परन्तु इसके लिये किसी पण्डितको रखूँ तो मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उसको तनखा दे सकूँ। मैंने कहा कि तुम भगवान्को नमस्कार करके, उनकी शरण होकर गीता पढ़नी शुरू कर दो। उन्होंने घर जाकर भगवान्का चित्र सामने रख दिया, धूप-बत्ती कर दी, पुष्प चढ़ा दिये और ‘**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**’ कहकर गीता पढ़ने लग गये। कुछ समयमें उनको गीता याद हो गयी! मैंने उनसे गीताके अठारह अध्याय ठीक संख्यासहित सुने। अशुद्धियाँ बहुत कम थीं।

विद्वत्ताके अभिमानसे गीता याद नहीं होती—ये उदाहरण भी मेरे सामने आये हैं। एक अच्छे पण्डित थे, जो रामायणके मर्मज्ञ थे। गीता-जयन्तीके अवसरपर मैंने गीताकी कुछ बातें कहीं तो उनका गीतामें आकर्षण हुआ। उन्होंने कहा कि मैं किसीसे कोई श्लोक सुन लेता हूँ ते वह मुझे कण्ठस्थ हो जाता है; अतः मैं गीताका अर्थ जानना चाहता हूँ। मैंने कहा कि आप गीताका एक बारहवाँ अध्याय याद करके मेरे पास आयें तो मैं उसका अर्थ आपको अच्छी तरहसे सुना दूँगा। कुछ दिनोंके बाद वे मेरेसे मिले और कहा कि मैं गीताको याद करनेके लिये बहुत परिश्रम करता हूँ, पर मेरेको गीता याद नहीं होती! इसका कारण मैंने यही समझा कि उनके मनमें अभिमान था कि मैं इतना जानकार हूँ, मेरेको बहुत जल्दी श्लोक याद हो जाते हैं। यह अभिमान पारमार्थिक मार्गमें बड़ा भारी बाधक है। **जो निरभिमान होकर सरलतापूर्वक गीताकी शरणमें जाता है, उसको गीताके भाव समझमें आ जाते हैं।**

गीताका आश्रय लेकर पाठ करनेमात्रसे बड़े विचित्र, अलौकिक और शान्तिदायक भाव स्फुरित होते हैं। इसका मन लगाकर पाठ करनेमात्रसे बड़ी शान्ति मिलती है। इसकी एक विधि यह है

कि पहले गीताके पूरे श्लोक अर्थसहित कण्ठस्थ कर लिये जायँ, फिर एकान्तमें बैठकर गीताके अन्तिम श्लोक ‘यत्र योगेश्वरः कृष्णः.....’—यहाँसे लेकर गीताके पहले श्लोक ‘धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे....’—यहाँतक बिना पुस्तकके उलटा पाठ किया जाय तो बड़ी शान्ति मिलती है। यदि प्रतिदिन पूरी गीताका एक या अनेक बार पाठ किया जाय तो इससे गीताके विशेष अर्थ स्फुरित होते हैं। मनमें कोई शंका होती है तो पाठ करते-करते उसका समाधान हो जाता है।

वास्तवमें इस ग्रन्थकी महिमाका वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। अनन्तमहिमाशाली ग्रन्थकी महिमाका वर्णन कर ही कौन सकता है? अनन्त मुखोंसे कही जानेवाली बातको भगवान्ने एक मुखसे गीतामें कह दिया है! इसलिये गीताके टीकाकार श्रीधरस्वामी लिखते हैं—

शेषाशेषमुखव्याख्याचातुर्यं त्वेकवक्त्रतः ।  
दधानमद्भुतं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

‘शेषनागके द्वारा अपने अशेष मुखोंसे की जानेवाली व्याख्याके चातुर्यको जो एक मुखसे ही धारण करते हैं, उन अद्भुत परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।’



एक व्यक्तिने पूछा कि मनुष्यको कम-से-कम कितना साधन करना चाहिये? मैंने कहा कि उसको कम-से-कम इतना तो करना ही चाहिये कि जहाँ अभी वह हैं, वहाँसे नीचे नहीं गिरे। जैसे, अभी हमें मनुष्यशरीर प्राप्त है तो कम-से-कम मरनेके बाद भी मनुष्यशरीर ही मिले। इसके लिये उपाय यह है कि प्रतिदिन गीताका पाठ करें। कारण कि प्रतिदिन गीतापाठ करनेवाला मनुष्य मृत्युके बाद पुनः मनुष्यशरीर ही प्राप्त करता है—

अध्यायं श्लोकपादं वा नित्यं यः पठते नरः ।  
स याति नरतां यावन्मन्वन्तरं वसुन्धरे ॥

(वाराहपुराण)

—परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज

## गीता-अमृत-बिन्दु

१. जब मनुष्य मस्तीमें, आनन्दमें होता है, तब उसके मुखसे स्वतः गीत निकलता है। भगवान्ने इसको मस्तीमें आकर गाया है, इसलिये इसका नाम 'गीता' है। यद्यपि संस्कृत व्याकरणके नियमानुसार इसका नाम 'गीतम्' होना चाहिये था, तथापि उपनिषद्-स्वरूप होनेसे स्त्रीलिंग शब्द 'गीता' का प्रयोग किया गया है।
२. श्रीमद्भगवद्गीताका उपदेश मनुष्यमात्रके अनुभवपर आधारित है।
३. गीता व्यवहारमें परमार्थकी विलक्षण कला बताती है, जिससे मनुष्य प्रत्येक परिस्थितिमें रहते हुए तथा शास्त्रविहित सब तरहका व्यवहार करते हुए भी अपना कल्याण कर सके।
४. गीता वेश, आश्रम, अवस्था, क्रिया आदिका परिवर्तन करनेके लिये नहीं कहती, प्रत्युत परिमार्जन करनेके लिये कहती है अर्थात् केवल अपने भाव और उद्देश्यको शुद्ध बनानेके लिये कहती है।
५. शास्त्रोंमें प्रायः ऐसी बात आती है कि संसारकी निवृत्ति करनेसे ही मनुष्य पारमार्थिक मार्गपर चल सकता है और उसका कल्याण हो सकता है। मनुष्योंमें भी प्रायः ऐसी ही धारणा बैठी हुई है कि घर, कुटुम्ब आदिको छोड़कर साधु-संन्यासी होनेसे ही कल्याण होता है। परन्तु गीता कहती है कि कोई भी परिस्थिति, अवस्था, घटना, देश, काल आदि क्यों न हो, उसीके सदुपयोगसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है।
६. एकान्तमें रहकर वर्षोंतक साधना करनेपर ऋषि-मुनियोंको जिस तत्त्वकी प्राप्ति होती थी, उसी तत्त्वकी प्राप्ति गीताके अनुसार व्यवहार करते हुए हो जायगी, सिद्धि-असिद्धिमें सम रहकर निष्कामभावपूर्वक कर्तव्य-कर्म करना ही गीताके अनुसार व्यवहार करना।
७. गीताके अनुसार कर्तव्यमात्रका नाम 'यज्ञ' है।
८. असत् पदार्थोंके साथ सम्बन्ध रखते हुए मनुष्य कितना ही अभ्यास कर ले, समाधि लगा ले, गिरि-कन्दराओंमें चला जाय, तो भी गीताके सिद्धान्तके अनुसार वह योगी नहीं कहा जा सकता।
९. गुरु बनना या बनाना गीताका सिद्धान्त नहीं है। मनुष्य आप ही अपना गुरु है। इसलिये उपदेश अपनेको ही देना है। जब सब कुछ परमात्मा ही है (वासुदेवः सर्वम्), तो फिर दूसरा गुरु कैसे बने और कौन किसको उपदेश दे?
१०. गीताकी शिक्षासे मनुष्यमात्रका प्रत्येक परिस्थितिमें सुगमतासे कल्याण हो सकता है।
११. गीता मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्तिका अधिकारी मानती है और डंकेकी चोटके साथ, खुले शब्दोंमें कहती है कि वर्तमानका दुराचारी-से-दुराचारी, पूर्वजन्मके पापोंके कारण नीच योनिमें जन्मा हुआ पापयोनि और चारों वर्णवाले स्त्री-पुरुष—ये सभी भगवान्का आश्रय लेकर परमगतिको प्राप्त हो सकते हैं (गीता ९।३०—३३)।
१२. भगवान्ने गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग आदि योगोंमें 'महात्मा' शब्दका प्रयोग नहीं किया है। केवल भक्तियोगमें ही भगवान्ने भक्तके लिये 'महात्मा' शब्दका प्रयोग किया है। इससे सिद्ध होता है कि गीतामें भगवान् भक्तिको ही सर्वोपरि मानते हैं।
१३. मात्र जीवोंका कल्याण करनेवाली होनेसे ही गीता विश्वमात्रको प्रिय, विश्ववन्द्य है।.....अर्जुन



जीवमात्रके प्रतिनिधि हैं और अपना हित ही चाहते हैं। अतः भगवान् उनके अर्थात् जीवमात्रके हितके उद्देश्यसे परम वचन कहते हैं। कल्याणके सिवाय जीवका अन्य कोई हित है ही नहीं। भगवान्के वचन भी कल्याण करनेवाले हैं और उनका उद्देश्य भी कल्याण करनेका है, इसलिये भगवान्की वाणीमें जीवका विशेष कल्याण (परमहित) भरा हुआ है।

१४. गीताके अनुसार दूसरेके हितके लिये कर्म करना 'यज्ञ' है, हरदम प्रसन्न रहना 'तप' है और उसकी चीज उसीको दे देना 'दान' है। स्वार्थबुद्धिपूर्वक अपने लिये यज्ञ-तप-दान करना आसुरी अथवा राक्षसी स्वभाव है।
१५. अगर मरणासन्न व्यक्तिकी गीतामें रुचि हो तो उसको गीताका आठवाँ अध्याय सुनाना चाहिये; क्योंकि इस अध्यायमें जीवकी सद्गतिका विशेषतासे वर्णन आया है। इसको सुननेसे उसको भगवान्की स्मृति हो जाती है।
१६. गीतामें वेदों तथा उपनिषदोंका सार और भगवान्के हृदयका असली भाव है, जिसको धारण करनेसे मनुष्य भयंकर-से-भयंकर परिस्थितिमें भी अपने मनुष्यजन्मके ध्येयको सुगमतापूर्वक सिद्ध कर सकता है।
१७. समस्त योगोंके महान् ईश्वरके द्वारा कहा जानेसे यह गीताशास्त्र 'योग' अर्थात् योगशास्त्र है। यह गीताशास्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ और गोपनीय है। इसके समान श्रेष्ठ और गोपनीय दूसरा कोई संवाद देखने-सुननेमें नहीं आता।
१८. भगवान्ने अपनी तरफसे कृपा करके ही गीताको प्रकट किया है।



यदि कोई जिज्ञासु पाठक गीताके विषयको विस्तारसे समझना चाहे तो उसे परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा रचित गीताकी 'साधक-संजीवनी' हिन्दी टीका अवश्य पढ़नी चाहिये। यह ग्रन्थ 'गीताप्रेस, गोरखपुर' से प्रकाशित है और इसका अँग्रेजी, बँगला, गुजराती, मराठी, ओड़िया, तमिल और कन्नड़ भाषामें भी अनुवाद उपलब्ध है।

# गीता-सार

## पहले अध्यायका सार

सांसारिक मोहके कारण ही मनुष्य 'मैं क्या करूँ और क्या नहीं करूँ'—इस दुविधामें फँसकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। अतः मोह या सुखासक्तिके वशीभूत नहीं होना चाहिये।

## दूसरे अध्यायका सार

शरीर नाशवान् है और उसे जाननेवाला शरीरी अविनाशी है—इस विवेकको महत्व देना और अपने कर्तव्यका पालन करना—इन दोनोंमेंसे किसी भी एक उपायको काममें लानेसे चिन्ता-शोक मिट जाते हैं।

## तीसरे अध्यायका सार

निष्कामभावपूर्वक केवल दूसरोंके हितके लिये अपने कर्तव्यका तत्परतासे पालन करनेमात्रसे कल्याण हो जाता है।

## चौथे अध्यायका सार

कर्मबन्धनसे छूटनेके दो उपाय हैं—कर्मोंके तत्त्वको जानकर निःस्वार्थभावसे कर्म करना और तत्त्वज्ञानका अनुभव करना।

## पाँचवें अध्यायका सार

मनुष्यको अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंके आनेपर सुखी-दुःखी नहीं होना चाहिये; क्योंकि इनसे सुखी-दुःखी होनेवाला मनुष्य संसारसे ऊँचा उठकर परम आनन्दका अनुभव नहीं कर सकता।

## छठे अध्यायका सार

किसी भी साधनसे अन्तःकरणमें समता आनी चाहिये। समता आये बिना मनुष्य सर्वथा निर्विकल्प नहीं हो सकता।

## सातवें अध्यायका सार

सब कुछ भगवान् ही हैं—ऐसा स्वीकार कर लेना सर्वश्रेष्ठ साधन है।

## आठवें अध्यायका सार

अन्तकालीन चिन्तनके अनुसार ही जीवकी गति होती है। अतः मनुष्यको हरदम भगवान्का स्मरण करते हुए अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे अन्तकालमें भगवान्की स्मृति बनी रहे।

## नवें अध्यायका सार

सभी मनुष्य भगवत्प्राप्तिके अधिकारी हैं, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश, वेश आदिके क्यों न हों।

## दसवें अध्यायका सार

संसारमें जहाँ भी विलक्षणता, विशेषता, सुन्दरता, महत्ता, विद्वत्ता, बलवत्ता आदि दीखे, उसको भगवान्का ही मानकर भगवान्का ही चिन्तन करना चाहिये।

## ग्यारहवें अध्यायका सार

इस जगत्को भगवान्का ही स्वरूप मानकर प्रत्येक मनुष्य भगवान्के विराटरूपके दर्शन कर सकता है।

### बारहवें अध्यायका सार

जो भक्त शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिसहित अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर देता है, वह भगवान्‌को प्रिय होता है।

### तेरहवें अध्यायका सार

संसारमें एक परमात्मतत्त्व ही जाननेयोग्य है। उसको जाननेपर अमरताकी प्राप्ति हो जाती है।

### चौदहवें अध्यायका सार

संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे अतीत होना जरूरी है। अनन्यभक्तिसे मनुष्य इन तीनों गुणोंसे अतीत हो जाता है।

### पन्द्रहवें अध्यायका सार

इस संसारका मूल आधार और अत्यन्त श्रेष्ठ परमपुरुष एक परमात्मा ही हैं—ऐसा मानकर अनन्यभावसे उनका भजन करना चाहिये।

### सोलहवें अध्यायका सार

दुर्गुण-दुराचारोंसे ही मनुष्य चौरासी लाख योनियों एवं नरकोंमें जाता है और दुःख पाता है। अतः जन्म-मरणके चक्रसे छूटनेके लिये दुर्गुण-दुराचारोंका त्याग करना आवश्यक है।

### सत्रहवें अध्यायका सार

मनुष्य श्रद्धापूर्वक जो भी शुभ कार्य करे, उसको भगवान्‌का स्मरण करके, उनके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ करना चाहिये।

### अठारहवें अध्यायका सार

सब ग्रन्थोंका सार वेद हैं, वेदोंका सार उपनिषद् हैं, उपनिषदोंका सार गीता है और गीताका सार भगवान्‌की शरणागति है। जो अनन्यभावसे भगवान्‌की शरण हो जाता है, उसे भगवान्‌ सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देते हैं।



## भगवद्गीता—विदेशी विद्वानोंकी दृष्टिमें

१. जो संसारकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है, उसके सम्बन्धमें भला, मैं क्या लिखूँ! यों तो गीताके अतिरिक्त और भी कई महान् धर्मग्रन्थ हैं, पर भगवद्गीताकी तो बात ही निराली है! वह तो ईश्वरोंके भी ईश्वर—परम महेश्वरका दिव्य संगीत है! —जॉर्ज सिडनी अरण्डेल।

२. भगवद्गीता भारतवर्षके उदात्त तथा संसारके गम्भीर धर्मशास्त्रोंमें मुकुटमणि है। —चार्ल्स जॉन्सटन।

३. विश्वके भावी सार्वभौम धर्मका सूत्रग्रन्थ बननेके लिये गीता ही सर्वथा उपयुक्त है। भारतके गौरवपूर्ण प्राचीनकालके इस अमूल्य रत्नसे मानव-जातिके और भी गौरवपूर्ण समुज्ज्वल विश्वके निर्माणमें अनुपम सहायता मिलेगी। —एफ० टी० बुक्स।

४. भगवद्गीताके अतिरिक्त ऐसा कोई दूसरा भारतीय ग्रन्थ नहीं है, जिसकी भारतवर्षमें एवं अन्यान्य देशोंमें दूर-दूरतक इतनी प्रसिद्धि हुई हो और जिसको ईश्वरीय संगीत मानकर हिन्दुस्तानके सभी लोग इतना प्रेम करते हों। —प्रो० ऑटो श्रौस।

५. गीताका उपदेश इतना दिव्य, ऐसा अलौकिक है कि बड़े-से-बड़े विद्वान्-बुद्धिमान् इसे पढ़ते हैं; परन्तु इसके भँवरमें पड़कर उनकी विद्या-बुद्धि चकरा जाती है! वे थाह नहीं लगा पाते, समझ नहीं पाते! इतना अलौकिक, ऐसा विलक्षण है यह प्रवचन कि जीवन-पथपर चलते-चलते अनेक निराश और श्रान्त पथिकोंको इसने शान्ति, आशा और आश्वासन दिया है और उन्हें सदाके लिये चूर-चूर होकर मिट जानेसे बचा लिया है—ठीक उसी प्रकार, जैसे इसने अर्जुनको बचाया। —के० ब्राउनिंग।

६. भारतवर्षके इस सर्वप्रिय काव्यमय दार्शनिक ग्रन्थके बिना अँग्रेजी साहित्य निश्चय ही अपूर्ण रहेगा। —सर एडविन ऑरनल्ड।

७. जगत्के सम्पूर्ण साहित्यमें, चाहे सार्वजनिक लाभकी दृष्टिसे देखा जाय और चाहे व्यावहारिक प्रभावकी दृष्टिसे देखा जाय, भगवद्गीताके जोड़का अन्य कोई भी काव्य नहीं है। —जे० एन० फरक्यूहर।

८. गीता केवल हिन्दुओंकी ही नहीं, अपितु संसारकी सभी जातियोंकी धर्म-पुस्तक है। प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह इस अमर ग्रन्थको ध्यानपूर्वक एवं पक्षपातरहित होकर पढ़े, चाहे वह किसी धर्मको और किसी धर्मगुरुको मानता हो। —कैखुशरू जे० दस्तूर।

९. गीताको लाखों मनुष्योंने सुना, पढ़ा तथा पढ़ाया है और आत्माको प्रभुकी ओर अग्रसर करनेमें यह पुस्तक अत्यन्त आशाजनक सिद्ध हुई है। —डॉ० लीओनेल डी० बैरेट।

१०. प्राचीन युगकी सभी स्मरणीय वस्तुओंमें भगवद्गीतासे श्रेष्ठ कोई भी वस्तु नहीं है।..... भगवद्गीतामें इतना उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके लिखनेवाले देवताको हुए अगणित वर्ष हो जानेपर भी उसके समान दूसरा एक भी ग्रन्थ अभीतक नहीं लिखा

गया।.....गीताके साथ तुलना करनेपर जगत्का आधुनिक समस्त ज्ञान मुझे तुच्छ लगता है।.....मैं नित्य प्रातःकाल अपने हृदय और बुद्धिको गीतारूपी पवित्र जलमें स्नान करवाता हूँ। —थारो।

११. किसी भी जातिको उन्नतिके शिखरपर चढ़ानेके लिये गीताका उपदेश अद्वितीय है। —वारेन हेस्टिंग्स।

१२. भारतवर्षके धार्मिक साहित्यका कोई अन्य ग्रन्थ भगवद्गीताके समान स्थान प्राप्त करनेके योग्य नहीं है। —रिचार्ड गार्बे।



### गीता-माहात्म्य

गीता मे हृदयं पार्थ गीता मे सारमुत्तमम्।  
गीता मे ज्ञानमत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम्॥  
गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम्।  
गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमो गुरुः॥  
गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे परमं गृहम्।  
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम्॥

(वैष्णवीयतन्त्रसार)

‘(श्रीभगवान् बोले—) गीता मेरा हृदय है, गीता मेरा उत्तम तत्त्व है, गीता मेरा अत्यन्त तेजस्वी और अविनाशी ज्ञान है, गीता मेरा उत्तम स्थान है, गीता मेरा परमपद है, गीता मेरा परम गोपनीय रहस्य है और गीता साधकोंके लिये अत्युत्तम गुरु है। मैं गीताके ही आश्रयमें रहता हूँ, गीता मेरा उत्तम घर है। गीता-ज्ञानका ही आश्रय लेकर मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ।’







**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**Icreator of  
hinduism  
server!**

 **KAPWING**



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

www.chakrafaceandbody.com.au

## गीताके प्रचारकी महिमा

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।  
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥  
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।  
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥

(गीता १८। ६८-६९)

‘( श्रीभगवान् बोले— ) मुझमें पराभक्ति करके जो इस परम गोपनीय संवाद ( गीता-ग्रन्थ )-को मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसके समान मेरा अत्यन्त प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है और इस भूमण्डलपर उसके समान मेरा दूसरा कोई प्रियतर होगा भी नहीं।’